THE TIMES OF INDIA

Date: 01-08-18

In Consumer Interest

Don't hobble e-commerce with archaic tools like price regulation

TOI Editorials

E-commerce in India has changed the way millions of Indians shop and simultaneously influenced operations of manufacturers and service providers. In a sense, this transformation has taken place in a policy vacuum. This is set to end with the advent of the draft e-commerce policy. The salient feature of this policy is the strategic intent which underpins it. In this most globalised of businesses, there is a clear intent to create an architecture which encourages Indian entrepreneurs. This should have a positive spillover on the domestic economy.

While the overall intent of the policy is positive, there are some suggestions which are inconsistent with the essence of e-commerce. The e-commerce phenomenon piggybacks on path breaking advances in information and communications technology. These advances have simultaneously transformed many areas such as financial payments.Another key outcome of e-commerce is that it radically lowers the cost of doing business and this, in turn, depends on ensuring the seamlessness of the chain. Some suggestions in the draft policy can lead to a regulatory regime which will be out of sync with the above essence of e-commerce.

To illustrate, of regulator opt to fix floor prices and prohibit discount below a thresh hold , there is a danger that technological advances and process improvement will not translate into consumer benefits, In a fast evolving sector, it is impossible for a regulator to use an archaic tool like price regulation to benefit consumers. Light touch regulation which does not fetter competitiveness in the marketplace is the best way to ensure consumer benefits- and not impede the evolution of e-commerce segment on the heels of technological advances. It is important ensure the overarching aim is in sync with the plumbing.

Date: 01-08-18

दैनिक भास्कर

असम में उठे नागरिकता के सवाल का जवाब आसान नहीं

संपादकीय

असम में 40 लाख लोगों का राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर(एनआरसी) के अंतिम मसौदे से बाहर होना इंसानियत और राष्ट्रीयता के बीच गंभीर समस्या का उपस्थित होना है। केंद्र और राज्य में सत्तारूढ़ भाजपा और उसकी सरकार ने यह साबित करने की कोशिश की है कि जो काम मुस्लिम वोट बैंक के चलते कांग्रेस सरकार टाल रही थी उसे उसने कर दिखाया। दूसरी ओर इसके पश्चिम बंगाल और देश के अन्य हिस्सों में पड़ने वाले प्रभाव को देखते हुए मुख्यमंत्री ममता बनर्जी और दूसरे विपक्षी नेताओं ने सरकार पर पक्षपात का आरोप लगाया है और इसे संवेदनशील मानवीय तरीके से हल करने की मांग की है।

40 लाख लोगों का आकार न सिर्फ असम की आबादी का 10 प्रतिशत है बल्कि दुनिया के तकरीबन सौ देशों की जनसंख्या से भी ज्यादा है। अगर सरकार कहना चाहती है कि भारत के भीतर पूरा देश अवैध तरीके से रह रहा है तो विपक्ष कह रहा है कि इतनी बड़ी आबादी को हम जेलों और शिविरों में रख नहीं सकते और बांग्लादेश को एक साथ वापस भी नहीं कर सकते। असम में अस्सी के दशक का छात्र आंदोलन असमिया लोगों की अस्मिता की समस्या और बांग्लाभाषियों की घुसपैठ के विरुद्ध चला था और उसे देश के तमाम धर्मनिरपेक्ष समूहों को समर्थन भी हासिल था। इंदिरा गांधी ने उसे सांप्रदायिक रंग दिया और बाद में अल्पसंख्यकों के नेल्ली नरसंहार के बाद समस्या हिंदू बनाम मुस्लिम का रूप लेती गई। उसे धीरे धीरे भाजपा ने अपना मुद्दा बना लिया।

हालांकि, राजीव गांधी ने 1985 में वहां की असम गण परिषद की सरकार से एक समझौता किया, जिसके तहत विदेशी नागरिकों को चिह्नित करने और उन्हें वापस भेजने का निर्णय लिया गया लेकिन, राजनीतिक इच्छा शक्ति के अभाव में व्यावहारिक धरातल पर समझौता लागू नहीं हो पाया। अब अगर पहचान करने का काम हुआ है तो उसे लागू करने की चुनौती सामने है। निश्चित तौर पर इस मसले पर ऐसी राजनीति छिड़ेगी, जिससे 2019 के चुनाव में एक राजनीतिक ध्रुवीकरण होगा और इसका असर असम ही नहीं पश्चिम बंगाल और त्रिपुरा पर भी पड़ेगा। देखना है कि सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में चल रही इस पहचान प्रक्रिया में न्यायालय संविधान और संयुक्त राष्ट्र के चार्टर के बीच झूलने वाले देशभक्ति और वसुधैव कुटुंबकम के सिद्धांत के माध्यम से टकराव टालने वाला कौन-सा व्यावहारिक फैसला करता है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 01-08-18

सराहनीय है डेटा संरक्षण पर श्रीकृष्ण समिति रिपोर्ट

सुनील अब्राहम, (लेखक सेंटर फॉर इंटरनेट ऐंड सोसाइटी के कार्यकारी निदेशक हैं)

नीति निर्माण करने वाले हलकों में एक चुटकुला चलता है- अगर सभी संबद्ध पक्ष समान रूप से नाखुश हों तो आपको यह समझ जाना चाहिए कि आप एक अच्छे समझौते पर पहुंच चुके हैं। उस दृष्टि से देखा जाए तो कह सकते हैं कि बीएन श्रीकृष्ण समिति ने सराहनीय काम किया है क्योंकि उसे लेकर कई शिकायतें हैं। निजी क्षेत्र के कुछ लोग इसलिए नाखुश हैं क्योंकि जनरल डेटा संरक्षण नियमन (जीडीपीआर) को खराब ढंग से पेश करने की उनकी कोशिश नाकाम रही है। अधिकारों, सिद्घांतों, नियामक के डिजाइन और प्रभाव आकलन आदि जैसे नियामकीय उपायों के डिजाइन के मामले में यह विधेयक काफी हद तक जीडीपीआर पर ही आधारित है। कुल वैश्विक कारोबार के 4 फीसदी के बराबर अधिकतम जुर्माने की व्यवस्था के साथ स्पष्ट संकेत दिया गया है कि विदेशों में स्थित मुख्यालय वाले उद्यमों द्वारा निजता के उल्लंघन के मामलों पर नियामक लगाम लगाएगा।

यूरोपीय नियमन के कई तत्त्वों से भरपूर कानून हमारे लिए अच्छी खबर है क्योंकि जीडीपीआर को दुनिया के शीर्ष मानवाधिकार संस्थान वैश्विक स्तर पर बेहतर मानक वाला मानते हैं। परंतु हमारे लिए बुरी खबर यह है कि विधेयक में निजी क्षेत्र के लिए अनावश्यक रूप से व्यापक डेटालोकलाइजेशन की बात कही गई है। वित्तीय और तकनीकी (फिनटेक) क्षेत्र की कुछ कंपनियां इसलिए नाखुश हैं क्योंकि समिति ने इस सुझाव को नकार दिया कि निजता का नियमन संपत्ति के अधिकार के रूप में किया जाए। यह मानवाधिकार की दृष्टि से सकारात्मक बात है। खासतौर पर इसलिए क्योंकि यह रुख यूरोपीय संघ समेत दुनिया भर में नकारा जा चुका है। संपत्ति का अधिकार उचित नहीं है क्योंकि श्रम के जरिये साझा को संपत्ति में सीमित करना व्यक्तिगत डेटा नहीं कहा जा सकता है। इसके अतिरिक्त पेटेंट या बौद्धिक संपदा और व्यक्तिगत सूचना में विशिष्ट परिसंपत्ति धारिता की तुलना की बात करें तो यह कई दर्जा ऊपर है। इससे नियमन को लेकर अकल्पनीय जटिलताएं पैदा हो सकती हैं। यह बात अर्थव्यवस्था के लिए भी नुकसानदेह साबित हो सकती है।

नागरिक समाज का एक हिस्सा जिसने आधार का विरोध किया वह नाखुश है क्योंकि यूआईडीएआई तथा अन्य सरकारी एजेंसियां अपनी इच्छा से बिना सहमति के डेटा का इस्तेमाल कर सकती हैं। ऐसी ही खामी जीडीपीआर में भी देखने मिलती है। याद रहे कि डेटा प्रसंस्करण की परिभाषा में संग्रहण, रिकॉर्डिंग, संगठन, संरचना, भंडारण, संयोजन, बदलाव, पुनप्र्राप्ति, उपयोग, सुसंगतता, सूचीबद्धता, पारेषण, अलगाव, प्रतिबंध और नष्ट करना आदि तमाम बातें शामिल हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि यूआईडीएआई बिना आपकी इजाजत के आपका डेटा ले सकता है। उसे अतीत में लिए गए डेटा के लिए भी आपकी सहमति की आवश्यकता नहीं है। एक अनिवार्य परीक्षण है जिसकी मदद से डेटासंग्रह को रोका जा सकता है। परंतु पिछले 10 वर्ष की अवधि में यूआईडीएआई ने गरीबों को सस्ता अनाज देने के लिए बायोमेट्रिक्स डेटा को अनिवार्य माना है। क्या ऐसे असंगत और बिना सहमति के डेटा संग्रह की प्रक्रिया जारी रहेगी? शायद हां, क्योंकि रिपोर्ट की अनुशंसा के मुताबिक यूआईडीएआई अच्छी खासी शक्तियों के साथ नियामक की भूमिका में बना रहेगा। यह वैसा ही है जैसे घोड़े को घास की रखवाली का काम सौंप दिया जाए।

कर्मचारियों की नाराजगी इसलिए क्योंकि विधेयक में एक विस्तृत आधार ऐसा भी है जिसके तहत नियोक्ता बिना सहमति के उनके आंकड़े जुटा सकते हैं। विधेयक भर्ती, सेवा समाप्ति, किसी तरह की लाभ या सेवा देने, उपस्थिति प्रमाण या किसी भी तरह के प्रदर्शन आकलन की गतिविधियों के लिए बिना सहमति के डेटा ले सकता है। इसकी इजाजत तब दी जाती है जब सहमति उचित आधार न हो या नियोक्ता की ओर से असंगत प्रयास किए जा रहे हैं। यह एक तरह से नियोक्ता के लिए निगरानी प्रणाली की तरह है। जीडीपीआर की तरह या तो इस आधार को हटा दिया जाना

चाहिए या फिर परीक्षण की एक सुसंगत व्यवस्था बनाई जानी चाहिए ताकि नियोक्ता बिना सूचना के काम करने के कंप्यूटर पर स्पाईवेयर आदि न डाल सके।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के कुछ पक्षधर इस बात से नाखुश हैं कि कानून में 'राइट टु बी फॉरगॉटन' का प्रावधान है। इस प्रावधान के तहत लोग चाहें तो इंटरनेट से अपना निजी डेटा हटाने का अनुरोध कर सकते हैं। उनकी चिंता यह है कि इसका इस्तेमाल अमीर और शक्तिशाली वर्ग द्वारा मुख्यधारा के और वैकल्पिक मीडिया को सेंसर करने में किया जाएगा। जीडीपीआर में राइट टु बी फॉरगॉटन के बरअक्स कहीं अधिक व्यापक राइट टु इरेजर है जबकि समिति के विधेयक में कहीं अधिक सीमित राइट टु रिस्ट्रिक्ट है। इसके तहत निरंतर खुलासों को रोका जा सकता है। बहरहाल जीडीपीआर में सार्वजनिक हित, वैज्ञानिक या ऐतिहासिक शोध आदि का उद्देश्य या सांख्यिकीय उद्देश्य एक स्पष्टं अपवाद है। जीडीपीआर की तरह विधेयक भी दो समर्थ मानवाधिकार निहितार्थों को रेखांकित करता है। पहला अभिव्यक्ति की आजादी और दूसरा सूचना का अधिकार।

निजता और सुरक्षा जैसे विषयों पर शोध करने वाले इसलिए नाखुश हैं क्योंकि पुनर्पहचान को तब तक एक अपराध घोषित कर दिया गया है जब तक कि उसे जनहित में या शोध कार्य के लिए प्रयोग में नहीं लाया गया हो। यह बात सकारात्मक है कि समिति ने पुनर्पहचान को एक अपराध करार दिया है। ऐसा इसलिए क्योंकि इसके जिन मानकों को नियामक ने अधिसूचित किया है वे अद्यतन गणितीय आकलन पर आधारित होंगे। बहरहाल नियामक जिस शोध को बचाना चाहता है उसके लिए विधेयक में औपचारिक और अनौपचारिक रूप से अकादमिक जगत को जवाबदेही और आपराधिक अभियोजन से राहत प्रदान की जानी चाहिए थी।

आखिरी और सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मानवाधिकार कार्यकर्ता इसलिए नाखुश हैं क्योंकि समिति ने पुन: जीडीपीआर के तर्ज पर कानूनी निगरानियों को जरूरी तवज्जो नहीं दी है। यूरोपीय संघ ने ऐतिहासिक तौर पर इससे निपटने के लिए अलग से ईप्राइवेसी रेग्युलेशन की मदद ली है। शायद हमें भी आगे चलकर वही रुख अपनाना होगा या फिर शायद हम इस संबंध में अवसर गंवा चुके हों। कुल मिलाकर बीएन श्रीकृष्ण समिति की सराहना की जानी चाहिए कि उसने एक बढिय़ा डेटा संरक्षण विधेयक का मसौदा प्रस्तुत किया है। अब हमारे सामने चुनौती है कि इसे और बेहतर बनाएं और जल्द से जल्द इसे कानून में बदलें।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 31-07-18

असम के आकाश पर नई आशंकाएं

रविशंकर रवि, (लेखकअसम के वरिष्ठ पत्रकार)

एक लंबी और जटिल प्रक्रिया से गुजरते हुए उच्चतम न्यायालय की देख-रेख में असम के लिए राष्ट्रीय नागरिक पंजी के अद्यतन का काम पूरा हो गया है और सोमवार को इसकी अंतिम मसौदा सूची प्रकाशित की गई। इसे असम के लिए ऐतिहासिक दिन बताया जा रहा है। करीब 3.29 करोड़ लोगों ने आवेदन दिया था, जिनमें से 2.89 करोड़ लोगों के नागरिकता प्रमाण दस्तावेज वैध पाए गए। यानी करीब 40 लाख लोग इसमें शामिल नहीं हो सके हैं। अखिल असम

छात्रसंघ (आसू) समेत सभी क्षेत्रीय संगठनों और दलों की नजर में इनमें से अधिकांश विदेशी नागरिक हैं। आसू समेत तमाम क्षेत्रीय संगठनों के नेता इसे अपनी बड़ी जीत मान रहे हैं, क्योंकि असम समझौते में राष्ट्रीय नागरिक पंजी अद्यतन किए जाने का जिक्र था, और इसके लिए इन संगठनों ने लंबा आंदोलन किया है।

असम ही नहीं, किसी भी राज्य या भू-भाग को अवैध नागरिकों से मुक्ति मिलनी ही चाहिए। असम में इसके लिए छह वर्ष तक आंदोलन भी चला। लेकिन उन बच गए 40 लाख लोगों का क्या होगा, इस पर कोई साफ तौर पर बोलने को तैयार नहीं है। आश्वासन के तौर पर यही कहा जा रहा है कि जिन भारतीय नागरिकों के नाम अंतिम मसौदा सूची में नहीं हैं, उन्हें अपनी नागरिकता साबित करने का पर्याप्त मौका दिया जाएगा। इसके लिए दावा और आपत्ति का प्रावधान रखा गया है। केंद्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह के निर्देश पर असम सरकार ने पुलिस को स्पष्ट निर्देश दिया है कि मसौदा नागरिक पंजी के आधार पर न तो किसी के खिलाफ कार्रवाई की जाए और न ही उनके नाम फॉरेनर्स ट्रिब्यूनल को भेजे जाएं। फिलहाल किसी को डिटेंशन कैंप में भी नहीं भेजा जाएगा। असम सरकार विभिन्न माध्यमों से लोगों को यह संदेश दे रही है कि यह अंतिम सूची नहीं, सिर्फ मसौदा है। लेकिन इस तरह के तथ्य भी सामने आए हैं कि अद्यतन प्रक्रिया के दौरान उपाधि और जन्म-स्थान को देखकर भी भेदभाव किया गया है। इस प्रक्रिया में कई खामियां पाई गई हैं।

असम के विधायक रामकांत देवरी का नाम भी सूची में नहीं है, जबकि वह यहीं के मूल निवासी हैं। हजारों नेपाली भाषियों के नाम भी इस सूची में नहीं दिख रहे हैं। जिन भारतीयों के नाम इसमें शामिल नहीं हैं, उनमें बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल से आकर असम में बसने वालों की संख्या ज्यादा है। 25 मार्च, 1971 से पहले आए लोगों से असम में आकर बसने का प्रमाण मांगा जा रहा है, जबकि बाहरी राज्यों से आकर बसे ज्यादातर लोग यहां आने के साथ ही खेती-किसानी या मजदूरी में जुट गए थे। तब न तो राशन कार्ड का प्रावधान था और न बैंक में खातों का ऐसा चलन। इन चीजों के बारे में किसी ने कभी कोई जरूरत भी महसूस नहीं की। इनमें से अधिकांश के नाम 25 मार्च, 1971 से पहले की मतदाता सूची में भी नहीं हैं। इस अवधि के बाद अन्य राज्यों से आए लोगों के लिए वंशवृक्ष का विकल्प दिया गया, ताकि साबित हो सके कि उनके पूर्वज भारत के किसी राज्य में निवास करते थे।

भारत के अन्य प्रांतों से आए लोगों ने अपने मूल प्रदेश से जुड़े दस्तावेज तो जमा कर दिए, जिनकी सत्यता की जांच के लिए उन्हें संबंधित राज्यों को भेजा गया, मगर उन दस्तावेजों में अधिकांश की सत्यता जांचकर वापस भेजने में संबंधित राज्य सरकारों ने उत्सुकता नहीं दिखाई। नतीजतन, इस तरह के तमाम भारतीयों के नाम सूची में शामिल होने से रह गए। अब ट्रिब्यूनल के समक्ष अपील करना, सुनवाई में शामिल होना और जरूरी दस्तावेज उपलब्ध करना इतना आसान तो है नहीं। सवाल यह भी है कि जब अद्यतन करने की प्रक्रिया के दौरान कर्मचारियों ने उनके दस्तावेज नहीं माने, तो ट्रिब्यूनल के जज उन्हें कितना महत्व देंगे? सवाल यह भी है कि 40 लाख लोगों में से कितने ट्रिब्यूनल का दरवाजा खटखटाएंगे? जाहिर है, असम को अवैध नागरिकों से मुक्त कराने के इस अभियान में फिलहाल लाखों भारतीय भी परेशानी में पड़ गए हैं। इस बात की प्रबल संभावना है कि आने वाले दिनों में नागरिक पंजी प्रकाशित होने के बाद आसू समेत दूसरे क्षेत्रीय संगठन एनआरसी के आधार पर मतदाता सूची में संशोधन की मांग करें।

फिर यह भी मांग उठ सकती है कि असम में व्यापार, नौकरी और संपत्ति खरीदने का अधिकार सिर्फ उन्हें मिले, जिनका नाम एनआरसी में हो। प्रकाशित सूची पर उल्फा ने भी संतोष जताया है, जबकि उल्फा भारतीय शासन प्रणाली को औपनिवेशिक व्यवस्था मानता है। साफ है, उल्फा भी असम में क्षेत्रीयता की धार पर सवार होकर अपने मनसूबे को पूरे करना चाहता है। असम में एक वर्ग पूरी तरह उग्र क्षेत्रीयतावाद को मजबूत करने में लगा है। उनके लिए असम सिर्फ

असमिया के लिए होना चाहिए। लिहाजा उच्चतम न्यायालय की सहमति से ऐसी व्यवस्था बनानी होगी कि असली भारतीयों को नाम शामिल कराने में कोई परेशानी न हो, वरना असम के मूल बाशिंदों और अन्य राज्यों से आकर बसे लोगों के बीच टकराव बढ़ेगा।

बेहतर होगा कि केंद्र और असम सरकार असली भारतीयों के नाम शामिल करने के लिए विशेष व्यवस्था करें। प्रक्रिया को सरल बनाने की भी जरूरत है, क्योंकि वे बेशक देश के दूसरे हिस्सों से आए हों, पर हैं तो भारतीय। और यह भी नहीं भूलना चाहिए कि अद्यतन का काम भारतीय नागरिक पंजी के लिए हो रहा है, असम की नागरिकता के लिए नहीं। ट्रिब्यूनल में दावे के बाद भी जिनके नाम सूची में शामिल नहीं हो पाएंगे, उनका क्या होगा, यह सवाल भी बना हुआ है। क्या दशकों से बसे बांग्लादेश मूल के लोगों को बांग्लादेश अपना नागरिक मानेगा और उन्हें वापस लेने को तैयार होगा? क्या उन्हें डिटेंशन कैंप में रखा जाएगा और कब तक वे इस स्थिति में रहेंगे? ये बेहद मानवीय सवाल हैं। उनके साथ आखिर किस तरह का बर्ताव किया जाएगा? इन पंक्तियों के लिखे जाने तक असम में कोई हिंसक प्रतिक्रिया भले न सामने आई हो, लेकिन एहतियातन भारी संख्या में सुरक्षा बल तैनात किए गए हैं। इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय नागरिकों को विदेशी घोषित करने की प्रतिक्रिया स्वरूप हिंसक उथल-पुथल सामने आ सकती है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 31-07-18

ट्रेड वार पर दिखी एकजुटता

ब्रिक्स देश

जयंतीलाल भंडारी

हाल ही में 25 से 27 जुलाई को दक्षिण अफ्रीका के जोहांसबर्ग में आयोजित दसवें ब्रिक्स (ब्राजील, रूस, भारत, चीन और दक्षिण अफ्रीका) शिखर सम्मेलन की ओर पूरी दुनिया की निगाहें लगी हुई थीं। इस सम्मेलन का विशेष महत्त्व इसलिए था, क्योंकि इस समय पूरा विश्व अमेरिकी संरक्षणवाद और नियंतण्र आतंकवाद के खतरे का सामना कर रहा है। ब्रिक्स के सामने व्यापार युद्ध और आतंकवाद के असर से न केवल खुद को वरन पूरी दुनिया को बचाने की जिम्मेदारी है। यह महत्त्वपूर्ण है कि 27 जुलाई को 10वें ब्रिक्स सम्मेलन को जो ब्रिक्स घोषणापत्र ब्रिक्स देशों द्वारा जारी किया गया, उसमें अमेरिकी व्यापार संरक्षणवाद और नियंतण्र आतंकवाद से निपटने के लिए एक समग्र रुख का आह्वान किया गया है। 10वें ब्रिक्स सम्मेलन में ब्रिक्स देशों के बीच इस बात पर सहमति बनी कि विश्व व्यापार संगठन (डब्ल्यूटीओ) के नियंतण्र ढांचे में स्थापित किए गए नियमों के आधार पर बहुपक्षीय व्यापार व्यवस्था ही आगे बढ़ेगी। अब अर्थतंत्र, कारोबार, वित्त, सुरक्षा और मानविकी के क्षेत्र सामूहिकता और सहयोग से ही आगे बढ़ेंगे।

अब एकाधिकार और संरक्षणवादी प्रवृत्ति का पुराना दौर दोहराने नहीं दिया जाएगा। शिखर सम्मेलन में जनतंत्र एवं बहुपक्षीय सहयोग की जोरदार वकालत की गई है। 2030 तक भुखमरी की स्थितियों से पूरी तरह निपटने का लक्ष्य रखा गया है। पर्यावरण के अनुकूल एनर्जी सिस्टम को विकसित करने के लिए ब्रिक्स एनर्जी रिसर्च कोऑपरेशन प्लेटफॉर्म बनाने का निर्णय लिया गया है। घोषणापत्र में कट्टरपंथ से निपटने, आतंकवादियों के वित्त पोषण के माध्यमों को अवरूद्ध करने, आतंकी शिविरों को तबाह करने और आतंकी संगठनों द्वारा इंटरनेट के दुरूपयोग को रोकने जैसे मुद्दे प्रमुख रूप से शामिल हैं। ब्रिक्स देशों के समूह ने कहा कि आतंकी कृत्यों को अंजाम देने, उनके साजिशकर्ताओं या उनमें मदद देने वालों को निश्चित रूप से जवाबदेह ठहराया जाना चाहिए। गौरतलब है कि कई 17 वर्ष पूर्व 2001 में ब्राजील, रूस, भारत और चीन के जिस ब्रिक्स समूह ने अंतरराष्ट्रीय कारोबारी परिदृश्य में एकजुट होकर आगे बढ़ने के लिए कदम उठाए थे, वही समूह 2011 में दक्षिण अफ्रीका को साथ लेकर ब्रिक्स के नाम से चमकते हुए तेजी से कदम बढ़ा रहा है। ब्रिक्स की स्थापना का मुख्य उद्देश्य अपने सदस्य देशों की सहायता करना है।

ये देश एक-दूसरे के विकास के लिए वित्तीय, तकनीक और व्यापार के क्षेत्र में एक-दूसरे की सहायता करते हैं। ब्रिक्स देशों के पास खुद का एक बैंक भी है। इसका कार्य सदस्य देशों और अन्य देशों को कर्ज के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान करना है। ब्रिक्स देशों के पास दुनिया की सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का करीब 30 फीसद हिस्सा है। विश्व का 18 प्रतिशत व्यापार ब्रिक्स देशों की मुट्ठी में है। पिछले 10 वर्षो में इन देशों ने नियंतण्र आर्थिक विकास में 50 प्रतिशत भागीदारी निभाई है। साथ ही पिछले 10 वर्षो में उभरते बाजारों और विकासशील देशों के बीच सहयोग के लिए ब्रिक्स एक महत्त्वपूर्ण मंच बन गया है। ब्रिक्स सदस्य देशों में एशिया, अफ्रीका, यूरोप एवं अमेरिका के देश शामिल हैं एवं जी20 के देश भी शामिल हैं।निश्चित रूप से प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 10वें ब्रिक्स सम्मेलन में किया गया संबोधन अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। सम्मेलन में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर हो रहे अमेरिकी संरक्षणवाद और आतंकवाद के मुद्दे को उठाया गया। मोदी ने कहा कि सभी राष्ट्रों को यह जिम्मेदारी लेनी होगी कि वे खुले नियंतण्र व्यापार में बाधक न बनें और उनकी धरती से कोई भी आतंकी गतिविधि न होने पाए। मोदी ने बहुपक्षवाद, अंतरराष्ट्रीय व्यापार और नियम-आधारित विश्व व्यवस्था के प्रति भारत की प्रतिबद्धता की पुष्टि की।

निश्चित रूप से 10वां ब्रिक्स सम्मेलन पूरी दुनिया के साथ-साथ भारत के लिए बहुत उपयोगी रहा है। ब्रिक्स सम्मेलन में इस बात पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया कि यदि विश्व व्यापार व्यवस्था वैसे काम नहीं करती जैसे कि उसे करना चाहिए तो डब्ल्यूटीओ ही एक ऐसा संगठन है, जहां इसे मजबूत किया जा सकता है। अगर ऐसा नहीं हुआ तो दुनियाभर में विनाशकारी व्यापार लड़ाइयां ही 21वीं शताब्दी की हकीकत बन जाएंगी। डब्ल्यूटीओ के अस्तित्व को बनाए रखने की इच्छा रखने वाले देशों के द्वारा यह बात भी गहराई से आगे बढ़ाई जानी होगी कि विभिन्न देश एक-दूसरे को व्यापारिक हानि पहुंचाने की होड़ की बजाय डब्ल्यूटीओ के मंच से ही वैश्वीकरण के दिखाई दे रहे नकारात्मक प्रभावों का उपयुक्त हल निकालें। इस शिखर सम्मेलन से ट्रेड वॉर के खिलाफ सामूहिक रूप से संगठित होकर ट्रेड वार की धार पलटने का प्रयास हुआ है। चूंकि अभी चीन के खिलाफ खुलकर और भारत पर छिटपुट हमले की शक्ल में अमेरिका का ट्रेड वॉर चल रहा है। रूस पर अमेरिका के कई तरह के प्रतिबंध पहले से ही जारी हैं। ब्राजील से अमेरिका का अच्छा व्यापारिक रिश्ता कभी रहा ही नहीं। ऐसे में सम्मेलन में ब्रिक्स देश अमेरिका के इस आक्रामक रवैये को लेकर रणनीति बनाकर आगे बढ़े हैं।

दसवें ब्रिक्स सम्मेलन में आर्थिक मुद्दों के अलावा आतंकवाद को समाप्त करने में सभी बिक्स देशों का सहयोग, संयुक्त राष्ट्र के ढांचे में सुधार, साइबर सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा और नियंतण्र व क्षेत्रीय मुद्दों के साथ-साथ आतंकवाद से लड़ने के

लिए नई रणनीति बनाना महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है। इस नई रणनीति के तहत अब ब्रिक्स के सभी देश पूरी ताकत से मनी लॉन्ड्रिंग और आतंकवादियों को मिलने वाले धन के खिलाफ संयुक्त कार्रवाई करेंगे और साइबर स्पेस में कट्टरपंथी प्रभाव पर नजर रखेंगे। इससे आतंकवाद से संघर्ष में काफी सहायता मिलेगी। निश्चित रूप से इस बार के शिखर सम्मेलन में पिछली बार के शिखर सम्मेलन से कहीं ज्यादा जोरदार ढंग से खुली और समावेशी विश्व अर्थव्यवस्था की मांग दोहराई गई है और विश्व को दृढ़तापूर्वक यह संदेश दिया गया कि कारोबार में सिर्फ अपना-अपना हित देखने के घातक प्रभाव होंगे। सम्मेलन के माध्यम से दुनिया को यह जोरदार संदेश दिया गया है कि बहुध्रुवीय दुनिया का निर्माण ब्रिक्स के घोषित लक्ष्यों में से एक है, लिहाजा अमेरिका के संरक्षणवादी कदमों और नियंतण्र आतंकवाद की प्रवृत्ति का मुकाबला करने के लिए ब्रिक्स के कदम अब तेजी से आगे बढ़ेंगे।

Date: 31-07-18

पसरते अपराध पर लगाम कब ?

मानव तस्करी

अभिषेक कुमार

दुनिया में मानव तस्करी को सबसे बड़ा अपराध माना जाता है पर इसमें हैरानी यह है कि 155 देशों में से 62 देशों में आज तक ‘‘मानव तस्करी’ के मामले में एक को भी अपराधी नहीं ठहराया गया। शायद यही वजह है कि इधर हाल में जब दिल्ली के मुनीरिका इलाके में दिल्ली महिला आयोग ने 16 नेपाली लड़कियों को दलालों के चंगुल से छुड़ाया गया, तो भी इसकी ज्यादा उम्मीद नहीं बंधी कि कोई सरकार और प्रशासन भविष्य में इस समस्या की पुख्ता रोकथाम की व्यवस्था कर पाएगा। इस मामले में स्थिति यह है कि नेपाल से तस्करी कर लाई गई लड़कियों को मुनीरिका की जिस जगह से छुड़ाया गया, वह पुलिस थाने से महज 500 मीटर दूर स्थित है, अरसे से नौकरी दिलाने के नाम पर लड़कियों को वहां लाया जा रहा था, लेकिन उसकी भनक पुलिस को नहीं लगी।

यह भी उल्लेखनीय है कि इन्हीं के साथ आई सात लड़कियों को पहले ही कुवैत और इराक भेजा जा चुका है। मानव तस्करी की कई विडबंनाएं हैं। जैसे में संयुक्त राष्ट्र (यूएन) के ड्रग्स एंड क्राइम ऑफिस के मुताबिक हर साल करीब 25 लाख लोग इसके शिकार होते हैं। इनमें से 80 फीसद महिलाएं और बच्चे होते हैं। इस बारे में यूनिसेफ के भी कुछ आंकड़े हैं। यूनिसेफ का कहना है कि हर साल करीब 12 लाख बच्चों (ज्यादातर लड़कियों) को मानव तस्करी में लगे रैकेट के जरिए एक देश से दूसरे देश पहुंचाया जाता है। कई देशों में तस्करी कर लाए गए लोगों को शरणार्थी के तौर पर देखा जाता है और चूंकि वहां पुख्ता एंटी ट्रैफिकिंग कानून नहीं हैं या उनके दूसरे देशों से सूचना बांटने और कार्रवाई करने के करार नहीं हैं, इसलिए ऐसे लोगों के भविष्य को लेकर लापरवाही बरती जाती है।

ऐसे में मानव तस्करी में लगे लोगों को इस अवैध धंधे में फायदा ज्यादा और खतरा कम होता है। सवाल है कि ह्युमन ट्रैफिकिंग में लाए गए लोगों का आखिर क्या होता है? तो इसका अहम जवाब है यौन शोषण। गरीब, गृहयुद्ध में फंसे और उपेक्षित देशों से जबरन या धोखे से लाई गई लड़कियों में से करीब 80 फीसद को इसी धंधे में धकेला जाता है। यूरोपीय

देश और खाड़ी के कुवैत-इराक जैसे देशों में ले जाई गई लड़कियों से जबरन देह व्यापार कराया जाता है। यूरोप इसके लिए एक पसंदीदा ठिकाना है क्योंकि वहां देह व्यापार में अच्छी कमाई होती है। इस समस्या से पीड़ित होने वालों में एशियाई देश सबसे आगे हैं क्योंकि गरीबी और भुखमरी से बचने के लिए कई बार लोग खुद ही अपने परिवारों की लड़कियों को दलालों के हाथों सौंप देते हैं। एक बार इस दलदल में फंसने के बाद महिलाओं को वहां से निकाल पाना कतई आसान नहीं होता है। हालांकि एक तय यह भी है कि देशों के भीतर एक राज्य से दूसरे राज्य में होने वाली मानव तस्करी अंततराष्ट्रीय तस्करी से कई गुना ज्यादा होती है। इसमें संदेह नहीं है कि मानव तस्करी के ज्यादातर मामलों में यह जानना काफी मुश्किल होता है कि मजदूरी या छोटी-मोटी नौकरी के नाम पर एक देश से दूसरे देश में अवैध रास्तों और तरीकों से धकेले गए लोग स्वेच्छा से ऐसा करते हैं या उन्हें बहला-फुसलाकर इसके लिए राजी कराया जाता है।

लेकिन समस्या की विकरालता को देखते हुए यह सुनिश्चित करने की जरूरत है कि आप्रवासन के नाम पर हो रहे गोरखधंधे पर रोक लगाई जाए और आप्रवास के पूरे मामले को कानूनी दायरों में लाया जाए? खास तौर पर महिलाओं की दुर्दशा के संबंध में ऐसा करने की तत्काल जरूरत है। मानव अंगों की सप्लाई, जबरन मजदूरी, भीख मंगवाने, शादी के लिए छल करने और शादी के बाद महिलाओं और उनके बच्चों की तस्करी करने जैसे जैसे अपराध मानव तस्करी के रूप में हो रहे हैं। ऐसे भी मामले सामने आए हैं जब लड़कियों को वक्त से पहले जवान करने के वास्ते उन्हें हॉर्मोन्स के इंजेक्शन दिए गए ताकि देह व्यापार की जरूरतों को पूरा किया जा सके। इंसान चूंकि अच्छे जीवन की खोज के लालच से बाहर नहीं जा पाता है, लिहाजा मानव तस्करी की पूरी तरह रोकथाम कर पाना किसी भी देश या सरकार के लिए आसान नहीं है। लेकिन अवैध घुसपैठ पर अंकुश लगाकर और वीजा-पासपोर्ट की वैधताओं को सुनिश्चित करने वाली व्यवस्थाएं बनाकर इस पर कुछ हद तक काबू पाया जा सकता है। मानव तस्करी की सूचनाओं को सरकारें और प्रशासन गंभीरता से लें और उन पर कार्रवाई करें तो ही इस दिशा में कुछ बदलाव संभव है। सरहदें पार करने के रास्ते वैध हों और पुलिस-प्रशासन तस्करी की हर मुमकिन कोशिश को रोकें, तो हालात बदले जा सकते हैं।

नईदुनिया

Date: 31-07-18

एनआरसी पर बेजा बवाल

संपादकीय

असम में राष्ट्रीय नागरिक रजिस्टर यानी एनआरसी का दूसरा एवं अंतिम मसौदा जारी होने और उसमें करीब 40 लाख लोगों को अवैध नागरिकों के रूप में चिह्नित करने पर कुछ विपक्षी दलों ने संसद के भीतर और बाहर हंगामा खड़ा करके यही स्पष्ट किया कि वे राष्ट्रीय महत्व के इस मसले को वोट बैंक की क्षुद्र राजनीति से ही देख रहे हैं। ऐसा करके वे राष्ट्रीय हितों की जान-बूझ कर अनदेखी कर रहे हैं। आखिर जब असम के मुख्यमंत्री से लेकर केंद्रीय गृहमंत्री तक यह कह रहे हैं कि जिनका नाम एनआरसी में नहीं है, उन्हें बाहर नहीं निकाला जाएगा और उन्हें खुद को भारतीय नागरिक साबित करने का अवसर दिया जाएगा, तब यह हौवा खड़ा करने की क्या जरूरत कि सरकार संकीर्ण राजनीतिक इरादों के तहत असम के लाखों लोगों को बाहर खदेड़ना चाह रही है? खतरनाक बात यह है कि यह दुष्प्रचार करते हुए इस तथ्य के

बावजूद सरकार पर निशाना साधा जा रहा है कि एनआरसी को सुप्रीम कोर्ट के निर्देश और निगरानी में तैयार किया गया है।

एनआरसी पर विपक्षी नेताओं की बेजा और कलह पैदा करने वाली चीख-पुकार से यह समझा जा सकता है कि असम में घुसपैठियों का मसला सुलझाने की कोशिश क्यों नहीं हो सकी? एनआरसी पर व्यर्थ का शोरगुल यह जानने के बाद भी हो रहा है कि असम की तमाम समस्याओं के मूल में अवैध घुसपैठ है। क्या एनआरसी पर आपत्ति जताने वाले यह भूल गए कि असम में बांग्लादेश से होने वाली घुसपैठ को लेकर कितने आंदोलन और कितनी उथल-पुथल हो चुकी है? यह ठीक नहीं कि घुसपैठ के सवाल को इस सच के सामने होने के बाद भी हिंदू-मुस्लिम का सवाल बनाया जा रहा है कि एनआरसी में बांग्लादेश से अवैध रूप से असम आ बसे लोगों में दोनों ही समुदायों के लोग हैं। इस मामले में वैसे तो कई विपक्षी दलों का व्यवहार भ्रम फैलाकर राजनीतिक रोटियां सेंकने वाला है, लेकिन तृणमूल कांग्रेस की नेता और पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी का रवैया सबसे आपत्तिजनक है। ऐसा लगता है कि वह बांग्लादेश से अवैध तरीके से भारत आकर रहने वाले लोगों की अगुआ बनना चाह रही हैं।

इस अगुआई का एकमात्र मकसद घुसपैठियों के वोट हासिल करना ही नजर आता है। यह सर्वज्ञात है कि वह इन घुसपैठियों के खिलाफ होने वाली हर पहल के विरोध में आ खड़ी होती हैं। यह साफ है कि वह इससे अनभिज्ञ रहना चाह रही हैं कि बांग्लादेश से चोरी-छिपे भारत की सीमा में घुस आए लोगों ने असम और पूर्वोत्तर के अन्य राज्यों के साथ ही पश्चिम बंगाल के कई इलाकों में भी राजनीतिक और सामाजिक परिदृश्य को बदलने का काम किया है। समय के साथ ऐसे निर्वाचन क्षेत्र बढ़ते जा रहे हैं, जहां चुनावी हार-जीत में बाहरी लोग निर्णायक साबित होने लगे हैं। जी हां, यह सच है कि बांग्लादेशी घुसपैठियों ने पहले राशन कार्ड आदि हासिल किए और फिर वे मतदाता बन बैठे। ऐसा राजनीतिक दलों की शह पर ही हुआ। नि:संदेह भारत एक बड़ा देश है, लेकिन वह धर्मशाला नहीं बन सकता और न ही यह भूल सकता है कि देश का विभाजन क्यों हुआ था।

THE HINDU

Date: 31-07-18

A good beginning: on draft data protection bill

The data protection bill drafted by the Srikrishna panel ticks many boxes

Editorial

Given the vast amounts of personal data being collected by private companies and state agencies, and their flow across national jurisdictions, the absence of a data protection legal framework in India has been a cause for deep concern. This is even more so because in many cases individuals whose data have been used and processed by agencies, both private firms and state entities, are oblivious to the purpose for which they are being harnessed. The need for legislation was also underlined last year with the landmark judgment in Justice K.S Puttaswamy v. Union of India that held the right to privacy to be a fundamental right. Against this backdrop, the draft legislation on data protection submitted by a committee of experts chaired by Justice B.N. Srikrishna to the Ministry of Electronics and Information Technology after year-long public consultations provides a sound foundation on which to speedily build

India's legal framework. It seeks to codify the relationship between individuals and firms/state institutions as one between "data principals" (whose information is collected) and "data fiduciaries" (those processing the data) so that privacy is safeguarded by design.

This is akin to a contractual relationship that places obligations on the entities entrusted with data and who are obligated to seek the consent of the "principal" for the use of personal information. The draft legislation puts the onus on the "data fiduciary" to seek clear, informed, specific and free consent, with the possibility of withdrawal of data of the "principal" to allow for the use and processing of "sensitive personal data". In many ways, the draft legislation mirrors the General Data Protection Regulation, the framework on data protection implemented in the European Union this May, in providing for "data principals" the rights to confirmation, correction of data, portability and "to be forgotten", subject to procedure. It envisages the creation of a regulatory Data Protection Authority of India to protect the interests of "principals" and to monitor the implementation of the provisions of the enabling data protection legislation.

Taken together, the draft bill and the report mark a welcome step forward, but there are some grey areas. The exemptions granted to state institutions from acquiring informed consent from principals or processing personal data in many cases appear to be too blanket, such as those pertaining to the "security of the state". These are hold-all phrases, and checks are vital. The report recommends a law to provide for "parliamentary oversight and judicial approval of non-consensual access to personal data". Without such an enabling law, the exemptions provided in the bill will fall short of securing accountability from the state for activities such as dragnet surveillance. The grey areas must spark public and parliamentary debate before a final legislation comes to fruition.

Date:31-07-18

The big five at 10

BRICS has grown in influence in its first decade but is still far from achieving its initial goals

Rajiv Bhatia, (Rajiv Bhatia is Distinguished Fellow, Gateway House, and former High Commissioner to South Africa)

In the age of Twitter, BRICS, or the grouping of Brazil, Russia, India, China and South Africa, has produced a 102-paragraph-long Johannesburg Declaration, one of the longest in recent years. This implies that either this important multilateral grouping has a lot to say about the state of the world or it needs to hire a sharp editor.It is prudent to proceed on the first assumption. There is little doubt that BRICS has grown in influence, expanded the arc of its interests, and established new institutions and partnerships in its first decade. More importantly, it has created for its members the habits of working together. Intra-BRICS cooperation is on a rising trajectory.

Yet, the fact remains that BRICS is still far from achieving its initial goals: reform of global financial governance, democratisation of the United Nations, and expansion of the Security Council — partially

because two of its members (China and Russia) do not want the other three members (India, South Africa and Brazil) to obtain parity in the global pecking order.

Summit highlights

In this backdrop, the 10th summit, held last week, framed its deliberations against U.S. President Donald Trump's unconventional approach on world affairs, particularly the looming trade wars. "The summit is about the context," said Maxim Oreshkin, Russia's Economy Minister. "We are at a time when the U.S. and China announce new measures almost every week."

BRICS leaders, therefore, stressed "the centrality of the rules-based, transparent, non-discriminatory, open and inclusive multilateral trading", based on the World Trade Organisation. This stemmed from their broader commitment to cooperate for strengthening multilateralism, the rule of law and an equitable international order. That one of the BRICS members (China) does not follow in word and spirit this high-sounding prescription in regard to Asian affairs may have escaped attention.

The other big idea emanating from the summit is to help nations to prepare for the Fourth Industrial Revolution. South Africa, as the host, zoomed in on it early and managed to create sufficient enthusiasm for it. Participants embraced it, articulating the need for a new strategy on employment, education and skill development as the digital revolution unfolds. BRICS Partnership on New Industrial Revolution (PartNIR), however, will make a meaningful contribution only if it goes beyond the five ministries of industry. It should engage with the private sector and young innovators working at the cutting edge of technology today.

The summit saw further consolidation of the business pillar. The BRICS Business Council has been actively enhancing trade and economic cooperation in diverse sectors ranging from manufacturing and energy to financial services and regional aviation. Besides, the leaders renewed their commitment to an inclusive and "people-centred approach" on development. The steady progress in interactions through sports, films, education, culture and tourism has been commendable.

Africa, BRICS Plus

The BRICS outreach to Africa began at the last summit hosted by South Africa, in 2013; it has picked up momentum now. But African leaders want more. They need big loans from the New Development Bank (NDB) for their infrastructure projects. A South African official stated that this would happen soon but uncertainty persists. So far, the NDB has dispersed loans totalling $5.1 billion — all to its members only.

China introduced the "BRICS Plus" format at the Xiamen summit last year by inviting a few countries from different regions. South Africa emulated it, arranging the attendance of top-level representation of five nations of its choice: Argentina, Jamaica, Turkey, Indonesia and Egypt. The precise role of "BRICS Plus" countries will take time to evolve. An immediate benefit is the immense opportunities it provides for networking among leaders. A large number of bilateral meetings took place on the summit's sidelines. For us, the most important was the interaction between Prime Minister Narendra Modi and Chinese President Xi Jinping, the third in four months, which deepened the trend towards conciliation between Asia's two biggest powers.

Unity and divergence

As a partnership that represents over 40% of the world's population and accounts for 22% of global GDP, BRICS will continue to be an influential voice as long as its convergences prevail over its divergences. Changing power equations within BRICS are being watched closely. China's dominance is a reality even as the grouping asserts the sovereign equality of all members. China-Russia proximity has been a continuing factor. Given its political and economic travails, Brazil played a low-profile role.

Mr. Modi and his delegation were pro-active and visible. A South African commentator observed that India was playing "a delicate geopolitical game with the U.S., China and Russia as their spheres of influence wax and wane" across regions. To Delhi's satisfaction, four paragraphs in the summit declaration were devoted to the problem of international terrorism. But no decision was taken to set up the BRICS credit rating agency that India favours. The India-South Africa partnership helped to ensure that the Johannesburg Declaration was balanced and well-rounded in its orientation.

The critical question is whether BRICS's exertions will have appreciable impact on G-7, the grouping of the developed countries, which is in disarray, and particularly on the U.S. administration.

Date: 31-07-18

A balancing Act

Amendments to the Prevention of Corruption Act aim to limit overzealousness of enforcement agencies, but they raise important concerns too

R.K. Raghavan is a former CBI Director

It is unfortunate that India has not been able to shed the image of a highly corrupt nation even after seven decades of Independence. The average Indian believes that he cannot get even the basic services to which he is entitled under the law without greasing the palms of one or more officials at the ground level. In the recent past, things have undoubtedly changed for the better — even if only marginally — when people try to obtain a passport, a driving licence, or a birth/death certificate. This is thanks to digitisation and the sensible pruning of prescribed procedures. The Centre and a few States deserve praise for taking some initiatives to reduce corruption. But this is small comfort. A lot more needs to be done before we can relax the fight against corruption among public servants.

Significant changes

It is against this backdrop that Parliament has passed the Prevention of Corruption (Amendment) Bill. At least one of the amendments, which mandates prior government approval of the Central or State government to initiate investigation into corruption charges, is bound to evoke negative reactions from large sections of the public. Protection to government servants from arbitrary and unilateral action by anti-corruption agencies without prior permission from the government was earlier available only to the higher echelons, from the rank of Joint Secretary and above, before the Supreme Court struck down the so-called 'Single Directive'. The latest tweak extends this protection to all public servants.

This is welcome but ambitious. The new directive that requires prior approval at the preliminary inquiry stage as well as before the registration of a regular case carries many imponderables, especially the risks involved in delegating authority to order commencement of investigations under the Act. Details of the expanded new procedure are not yet known. The Central Vigilance Commissioner may have to step in with some practical guidelines. The exercise involved here is enormous, given the size of India's bureaucracy and the entrenched sophistication of dishonest practices. If the sanctioning authority is itself dishonest, can you expect an objective application of mind?

We cannot fault anti-corruption agencies if they believe that this change in procedure would embolden dishonest government personnel. But this is debatable. Only the speed and honesty of administrative ministries while acting on requests for permission from the Central Bureau of Investigation (CBI), in particular, for initiating action against an erring official would give us an idea of the practical difficulties involved.

Another major change is the deletion of the whole of clause (d) of sub-section (1) of Section 13, which defines 'criminal misconduct' as the acquisition of a 'valuable thing' or 'pecuniary advantage' in a dishonest manner. The deleted clause was the sole effective weapon against a misbehaving senior official. This deletion (without substituting it with any other clause) is disappointing because corruption in high places is sophisticated and takes place in a highly clandestine manner.

A few experts believe that there is also a certain dilution of the definition of 'known sources of income' through the incorporation of the statement that this would include income received from any 'lawful source', an expression that has been left undefined. This is critical because of the misconception that as long as tax has been paid on income received from an undisclosed and illegitimate source, such income becomes lawful.

One reasonable apprehension is that where a public servant causes performance of a public duty which is improper and against prescribed rules and procedures, and there is no proof of a transaction of bribery, he will go scot free. What if such improper performance is in lieu of future bribes or post-retirement jobs? There is a misgiving here that the latest amendments to Section 13(1) could be in conflict with the spirit of Article 19 of the United Nations Convention Against Corruption.

One of the welcome amendments widens the definition of criminal misconduct to include the bribe giver too. In the past, the bribe giver had enjoyed immunity and that helped perpetuate corruption. There is, of course, the proviso that a person who had been coerced into giving a bribe cannot be proceeded against. It is incumbent on his part to report such coercion to the authorities within a week of the incident.

The amendments include a stipulation for a day-to-day trial and completion of court proceedings within two years. Where this is not possible, the judge concerned will have to record reasons for prolongation of the trial and give himself an initial extension of six months. Given the overburdening of the judiciary, even fast-track courts may be unable to stick to this deadline.

Walking a tightrope

It must be remembered that in handling misdemeanours of government officials, we are prone to committing excesses and ignoring human rights considerations. This is deleterious to the morale of public servants. The amendments are meant to balance overzealousness and apathy. As in the case of a common crime, we must consider whether conferring greater autonomy on investigating outfits,

shortening trial procedures through mechanisms such as fast-track courts, and making penalties more stringent will introduce the much-needed deterrence to prospective offenders. It is an accepted criminal justice axiom that deterrence works only up to an extent; beyond the threshold, the incidence of crime only escalates. This is why there is support to the balanced stand that giving arbitrary and excessive authority to enforcement agencies could only lead to miscarriage of justice, without bringing about a corresponding reduction in criminal misconduct.

In sum, a totally negative perception of the Act may not be warranted. The primary objective of these amendments is to tone down law enforcement excesses without diluting the authority of agencies like the CBI; or, in other words, to strike a balance between enforcement overzealousness and the need for stringent action against corrupt public servants. With some civil servants complaining that they had been wronged for discharging their lawful duties, such a balance is the need of the hour.

However, all this does not answer the fundamental question of how to cleanse our public administration. Is there a flaw in the psyche of the average Indian which pushes him to pay a price for securing a service without having to wait for it? If yes, we are fighting a never-ending battle which has earned us painful ignominy in world forums.